एक प्रागैतिहासिक गुफा के विभिन्न स्थानों पर ध्वनि की जांच करने पर पाया गया कि अधिकांश चित्र उन जगहों पर बनाए गए थे जो गुंजायमान थीं। तो क्या गुफा मानव पहले विभिन्न हिस्सों की ध्वनि गुणवत्ता की जांच करते थे और इसके आधार पर चुनाव करते थे कि कहां चित्र बनाने हैं।

पहले संगीत आया, चित्रकारी बाद में

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

पेरिस विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आइगोर रेस्नीकॉफ ध्वनि गुंजन विज्ञान (एकूस्टिक) के विशेषज्ञ हैं। वे कंसर्ट हॉल्स, प्रेक्षागृह और गिरजाघर वगैरह के एकूस्टिक्स का अध्ययन करते हैं।

इस लिहाज़ से चर्च खास तौर से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनकी योजना एकूस्टिक्स के ख्याल से बनाई गई है। जब आप किसी सदियों पुराने गिरजाघर में बैठकर पियानो वादन या कोरस गान सुनें तो गहन श्रवण आनंद में खो जाएंगे। गौरतलब है कि जिस ज़माने में ये गिरजाघर बनाए गए थे, उस समय न तो माइक थे, न एंप्लीफायर। और तो और, उस समय बिजली तक नहीं थी। फिर भी इन इमारतों और इनके बीच बने प्रार्थना कक्ष में अनुनाद इतना निर्दोष होता है कि यहां बैठकर बैक्थे की रचना को सुनना एक रोमांचक अनुभव होता है।

हाल ही में प्रोफेसर रेस्नीकॉफ ने अपना ध्यान गिरजाघरों की बजाय पाषाण युग के मानव के शैलाश्रयों के एकूस्टिक्स पर लगाया है। उन्होंने अपने शोध के निष्कर्ष हाल ही में युरोप व अमेरिका के एकूस्टिक्स विशेषज्ञों के एक सम्मेलन में प्रस्तुत किए। इसके बारे में लिखते हुए सुश्री जेनीफर वीगास बताती हैं कि प्रो. रेस्नीकॉफ ने बताया कि जब वे फ्रांस के कुछ इलाकों में प्रागैतिहासिक (करीब 12,000 वर्ष पुराने) शैलाश्रयों में गए, तो वहां के चित्र देखकर दंग रह गए।

मगर उनके दिमाग में यह सवाल भी उठा कि ये चित्र गुफाओं में कुछ ही जगहों पर क्यों बनाए गए हैं, बाकी जगहों पर क्यों नहीं। अधिकांश चित्र कुछ स्थानों पर झुंड में बनाए गए थे जबकि शेष जगहों पर लाल रेखाएं खिंची थीं। ये सब (चित्र व रेखाएं) गुफा-मानवों द्वारा बनाए गए थे, आधुनिक युगलों की चित्रकारी नहीं थे। तो ऐसा क्यों?

वीगास उनको उद्धरित करती हैं, "पहली बार जब मुझे एक प्रागैतिहासिक गुफा में जाने का मौका मिला, तो मैंने गुफा के विभिन्न स्थानों पर अनुनाद की जांच की। फौरन यह सवाल उठाः क्या अनुनाद और चित्रकारी के स्थल के चुनाव के बीच कुछ सम्बंध है?"

गूंजते स्थल

इस उलझन को सुलझाने के लिए उन्होंने गुनगुनाकर और गाकर गुफा के विभिन्न स्थानों पर ध्वनि की जांच की। उन्होंने पाया कि अधिकांश चित्र उन जगहों पर बनाए गए थे जो गुंजायमान थीं। जिस स्थान का अनुनाद जितना अच्छा था, उस जगह के आसपास की दीवाल पर उतने ही अधिक चित्र बनाए गए थे। जहां अनुनाद घटिया था, जैसे संकरे रास्तों में, वहां चित्र नहीं थे बल्कि सिर्फ लाल रेखाएं खिंची थीं। क्या गुफा-मानव पहले गुफा के विभिन्न हिस्सों की ध्वनि गुणवत्ता की जांच करते थे और इसके आधार पर चुनाव करते थे कि कहां चित्र बनाने हैं। यदि ऐसा है, तो इससे संकेत मिलता है कि रॉक पेंटिंग की प्रेरणा 'रॉक' संगीत से मिली थी।

पहले संगीत आया था और इसके आधार पर तय हुआ था कि चित्र कहां बनाए जाएंगे। इस प्रकार से अधिकतम

तालमेल होने की संभावना है। यानी पाषाण युग में प्रदर्शन कलाएं पहले आई थीं, दर्शन कलाएं बाद में।

यह तो जानी-मानी बात है कि हम संगीत से उद्वेलित होते हैं। ज़रूरी नहीं कि हम गिरजाघर में किसी प्रवचनकार को सुनकर ही उद्वेलित हों। सुर में बजाए गए तानपुरे की तान सुनना बहुत आनंददायी होता है। और श्रीमति राजम वायलीन पर राग गोरख कल्याण बजाएं, साथ में उस्ताद ज़ाकिर हुसैन तबले पर संगत करें, तो हम किसी दूसरी दुनिया में खो जाते हैं। मगर न तो हम ध्वनि के अनुनाद के बारे में बहुत ज़्यादा जानते हैं, न ही उन कारकों के बारे में जो इसे नियंत्रित करते हैं। इस अर्थ में एकूस्टिक विशेषज्ञ वास्तुशिल्पी होते हैं - थोड़े वैज्ञानिक, थोड़े कलाकार। यह विषय ही अपने आप में कुछ हद तक प्रयोग-आधारित और कुछ हद तक अनुभव-आधारित है। ऐसे संदर्भों में जिस शब्द का उपयोग किया जाता है वह है - ह्यूरिस्टिक यानी स्वतःशोधी।

दुनिया में सबसे अच्छे वायलिन 17वीं सदी में एक इतालवी एंतोनियो स्त्रादिवारी ने बनाए थे। यह आज भी एक पहेली है कि ये वायलिन इतने अच्छे क्यों थे। आजकल ऐसा माना जाता है कि इनकी गुणवत्ता इनकी लकड़ी के घनत्व से सम्बंधित है। इसी प्रकार से हिंदुस्तानी संगीतज्ञ कहते हैं कि सबसे बढ़िया तानपूरे महाराष्ट्र के मीरज-सांगली क्षेत्र में बनते हैं। वहां तानपूरे बनाने के लिए जिस कद्दू या पेठे की खोल का उपयोग किया जाता है, उसमें कुछ अनोखे व खास गुण हैं।

पंडित रविशंकर श्री नोदु मलिक की बहुत तारीफ किया करते थे कि वे सबसे बढ़िया सितार बनाते हैं। मलिक को सितार का स्त्रादिवारी कहा जाता है और उन्होंने कुल 36 से ज़्यादा सितार नहीं बनाए थे। इनमें से हरेक अत्यंत कीमती था। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सितारों की गुणवत्ता का राज़ उनमें उपयोग की गई सामग्री के अनुनाद में था।

यह सामग्री हमेशा लकड़ी या वनस्पति उत्पाद हो, ऐसा ज़रूरी नहीं है। खोखले पत्थर और हड्डियों का भी सही ढंग से चुनाव करके तराशा जाए, तो ज़बर्दस्त अनुनाद पैदा कर सकते हैं।

मदुरै के नजदीक मीनाक्षी मंदिर या हंपी के मंदिरों के संगीतमय खंभे चट्टानों के इस लचीलेपन के गवाह हैं। सुदूर अतीत यानी निएंडर्थल युग में जाएं, तो क्रोएशिया/स्लोवेनिया में 50,000 साल पुरानी बांसुरियां मिली हैं, जो हड्डियों को खोखला करके बनाई गई हैं।

ऐसा लगता है कि हम हर उपलब्ध चीज़ से संगीत रच सकते हैं। जमैका के लोग टीन के डिब्बों, एल्यूमिनियम के ढक्कनों, चमड़े, सोडा वॉटर बोतल के ढक्कनों का उपयोग करके बढ़िया संगीत तैयार करते हैं। भारत की ट्रेनों में आपने बच्चों को पत्थरों को बजाते सुना ही होगा। शैलचित्रों पर प्रोफेसर रेस्नीकॉफ के अध्ययन के बारे में निष्कर्ष स्वरूप जेनीफर वीगास कहती हैं, "यह संभव है कि सारा मानवीय संगीत गुफाओं के उस गुंजन की स्मृतियों में उपजा है।"

अलबत्ता, रेस्नीकॉफ के अध्ययन का ज़्यादा उल्लेखनीय पहलू यह है कि चित्रों की प्रेरणा संगीत से मिली। तो पाषाण काल के इन्सान कैसा संगीत रचते थे? और इसने उनके चित्रों में किस तरह के विषयों की प्रेरणा दी होगी - शिकार, युद्ध, आसपास के जानवरों की अठखेलियां? मध्यप्रदेश में आदमगढ़ और भीमबेटका की प्रागैतिहासिक गुफाओं का एकूस्टिक अध्ययन करना इस दृष्टि से उपयोगी होगा। उनमें भी तो बेशुमार शैलचित्र हैं। क्या ये चित्र फ्रांस में बने चित्रों से विषय या कथा की दृष्टि से भिन्न हैं? क्या इन गुफाओं में ध्वनियां वहां से भिन्न हैं? इस तरह का शोध ऐसे किसी संगीतज्ञ को बहुत रास आएगा जिसे पुरातत्व में भी रुचि हो।

संगीत और चित्रकारी

वर्तमान में भी संगीत व चित्रकारी के मेलजोल के कुछ उदाहरण हैं। मगर इनका कोई महत्व नज़र नहीं आता। एक ही मंच पर भीमसेन जोशी का गाना और एम.एफ. हुसैन द्वारा चित्रकारी एक शगूफे से ज़्यादा कुछ नहीं था।

शायद किसी को तंजौर और रामेश्वरम मंदिर के अंदरुनी भागों के एकूस्टिक और हंपी व मदुरै के संगीतमय खंभों पर तराशी गई मूर्तियों का अध्ययन करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उनमें किस तरह की छवियां बनी हैं, उनके विषय क्या हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***